नारी-शिक्षा का महत्त्व

□ साध्वीश्री जयश्री

(युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी की शिष्या)

"स्त्री शूद्रो नाधीयेताम्" अर्थात् स्त्री और शूद्र विद्या के अधिकारी नहीं हैं; विद्या के पात्र नहीं है। पहले इस विचारधारा में पलने वाले बुजुर्ग अपनी लड़कियों को बिल्कुल नहीं पढ़ाते थे; उन्हें सर्वथा अशिक्षित ही रखते थे; जिसके फलस्वरूप नारी-शिक्षा का विकास नहीं हो सका। उनकी भावना इस रूप में प्रस्फुटित हुई—

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और नयनों में पानी॥

नारी-हृदय स्वभावतः ही मृदु, कोमल, करुणाप्लावित और रस से संयुक्त होता है। उसकी यह कोमलता ही उसे विरह-व्यथा से सतत प्रताड़ित करती रहती है। जबकि पुरुष-हृदय पाषाण की भाँति कठोर होता है। वह कभी तपस्या का बहाना बना घोर जंगल की ओर प्रस्थान कर देता है तो कभी रूपलावण्यमयी स्त्री के मोह-पाश में आबद्ध हो अपनी स्त्री से सदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद कर देता है। उसे पूर्वापूर्व का तनिक भी ख्याल नहीं रहता। नारी का भावुक हृदय सतत तिल-तिल कर जलता है, जिससे उसका सांसारिक जीवन बहुत ही दुर्वह हो जाता है। वह अपने इस दुर्वह भार को अश्रुधारा के माध्यम से ही हल्का कर सकती है और उसके पास उपक्रम ही क्या है? यह दुर्दशा पुरातन युग के नारी समाज की ही अधिक हुई है। शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में जायें तो पायेंगे कि अगर नारी शिक्षित व पढ़ी-लिखी होती तो क्या वह पुरुषों की कारा में रहना पसन्द करती? कदापि नहीं। आधुनिक युग का नारी समाज पुरुष-वर्ग को एक नयी चुनौती देता है। आज की महिलायें साहस और पराक्रम को संजोये हुए हैं। उनकी मानसिक चेतना का अनावरण हुआ है। कायरता सदा के लिए विदा ले चुकी है, वीरत्व जाग उठा है। उसके सोचने-समझने का मानदण्ड ही बदल गया है। पुरुषों की परायत्तता अब उन पर अधिक नहीं टिक सकती। पुरातन मान्यताएँ, धारणाएँ ऐसी थीं कि पुरुषों के अभाव में महिलाएँ अपना जीवन-यापन नहीं कर सकतीं। अतीत की इन मान्यताओं में अब बहुत कुछ परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है।

नारी सम्बन्धी विवाह समस्या किसी न किसी रूप में आज के विश्व-क्षितिज पर अभिव्यंजित होती रही है। उसके सामाजिक तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों को लेकर कम तर्क-वितर्क पैदा नहीं हुए। भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में नारी की शिक्षा-दीक्षा की वस्तुस्थिति पर पुनः गम्भीर चिन्तन मनन किया गया। एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी उभरा कि वस्तुतः उसका कार्य क्षेत्र क्या है और क्या होना चाहिये? नारी केवल घर-परिवार की चहारदीवारी में बन्द रहकर अपने पति तथा पुत्र की सेवा-शुश्रूषा में ही लगी रहेगी अथवा उस धरातल से ऊपर उठकर कुछ वैचारिक क्रान्ति भी कर सकेगी। उच्च शिक्षासम्पन्न तथा बृहत्तर प्रतिभावान् नारी को कुछ वर्षों के पश्चात् नारी-स्वातन्त्र्य एवं नारी-जागरण का सामाजिक मूल्य संप्राप्त हुआ, नारी को सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्रान्ति करने को प्रोत्साहित किया गया। दार्शनिकों, कवियों, कलाकारों ने नारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के इन उदात्त विचारों का हृदय से स्वागत किया, जिसके फलस्वरूप नारी ने घर के समग्र दायित्वों का सम्यक् निर्वहन कर शिक्षा के क्षेत्र में अपना चरण-विन्यास किया। स्कूलों, विश्वविद्यालयों, चिकित्सा केन्द्रों तथा अन्य सभी संगीत नाट्य-प्रतियोगिताओं में आशातीत नैपुण्य व साफल्य प्राप्त कर सर्वाधिक प्रतिभा का सर्वतोभावेन विकास किया। यह विकास का क्षेत्र उसका तब खुला कि जब उसे बन्धन की कारा से मुक्त बनने का अवसर मिला। कुण्ठाओं को परास्त कर वह स्वायत्ततामय जीवन जीने लगी। उसकी इस प्रसन्नता को शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। उसने जितनी यातनाएँ—पीड़ाएँ सहीं, उसकी पृष्ठभूमि में पुरुष और नारी के पारस्परिक सम्बन्ध को सुरक्षित बनाए रखने का ही एक मात्र हेतु परिलक्षित होता है। इतना होने के बावजूद भी पुरुष स्त्री की वात्सल्यमयी भावनाओं को ठुकराता रहा है।

कामायनी में एक प्रसंग आता है—मनु और श्रद्धा का। मनु अपने पुरुषत्व के अभिमान में श्रद्धा को अकेली असहाय छोड़कर चले जाते हैं। वह अपनी हृदयगत भावनाओं को इस प्रकार चित्रित करती है—

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की॥

वह अपने प्रियतम को पुकारकर कहती है कि मुझे भी विधाता ने आधा अधिकार प्रदान किया है। इसीलिये तो मुझे अर्धाङ्गिनी कहते हैं। एक कवि ने अपने मार्मिक शब्दों में कहा है—

न ह्येकेन चक्रेण, रथस्य गतिर्भवेत्।

संसाररूपी रथ के दो पहिये होते हैं—स्त्री और पुरुष। अगर एक पहिये में कुछ त्रुटि हुई कि रथ लड़खड़ाने लग जायेगा। अपने गन्तव्य स्थल पर सम्यक्तया नहीं पहुँच सकेगा। अतः वह अपने उत्तरदायित्वों को पूर्णतया निभा सके तथा अपने गार्हस्थ्य जीवन को सन्तुलित बनाये रख सके—इसीलिए ही नारी-शिक्षा का होना अत्यन्त अपेक्षित है; क्योंकि बालक एवं बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा का शुभारम्भ माँ के स्नेहिल हृदय से ही होता है। अगर वह स्वयं अशिक्षिता होगी तो अपनी संतानों को कैसे शिक्षित बना सकेगी। मेजिनी के शब्दों में—

"The lesson of the child begins between the father's laps and mother's knees."

आप इतिवृत्त के पृष्ठों को पढ़िये। जितने भी महापुरुष इस वसुन्धरा पर अवतरित हुए, वे सब माताओं की गोद से ही अवतरित हुए हैं, न कि आकाश से टपके हैं। आकाश से उतरने का तो प्रश्न ही निराधार होगा। उनका लालन-पालन, शिक्षा-संस्कार आदि कार्यों में माताओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वे उनमें सदैव पवित्र विचारों की गंगा प्रवाहित करती रही है। महात्मा गांधी ने स्वाभिमान के साथ कहा कि—भारतीय धर्म अगर जीवित रहा तो एक मात्र स्त्रियों के कारण ही जीवित रहा वरना वह कभी का लुप्त हो जाता। जहाँ का धर्म जीवित है वहाँ का नैतिक व चारित्रिक धरातल तो स्वतः ही समृद्ध हो जाता है। संस्कृति के गौरव को अगर किसी ने सुरक्षित रखा है तो भारत की माताओं का शील व चारित्रिक बल ही इसका मुख्य आधेय है। यहीं से सुख का सूर्य प्रज्वलित हुआ है और यहीं से आनन्द का स्रोत प्रवहमान हुआ है। श्रमण भगवान महावीर की वाणी से भी यही धारा फूट पड़ी कि जितने आध्यात्मिक अधिकार पुरुषों को प्राप्त हैं उतने ही स्त्रीवर्ग को भी। उन्होंने धार्मिक भेद-रेखा को परिसमाप्त कर दिया। उसी के फलस्वरूप उनकी शिष्य-परम्परा में जितनी संख्या श्रमणों की थी, उससे अधिक संख्या श्रमणियों की थी। उन्होंने स्त्रियों को मोक्ष का मुक्तभाव से अधिकार दिया। जबकि गौतम बुद्ध ने स्त्रियों को संन्यास देना अपने धर्मसंघ की मर्यादा के प्रतिकूल माना। उनकी संकीर्ण वृत्ति स्पष्टतः प्रतिभासित होती है। नारी को उन्होंने शौर्य-हीन, पराक्रमहीन समझकर धर्म-क्रान्ति करने एवं अपना आत्मोत्थान करने से सर्वथा वंचित रखा। आप इतिवृत्त के परिप्रेक्ष्य में पायेंगे कि स्त्रियों व साध्वियों ने अपने शील की रक्षा हेतु प्राणों का बलिदान कर दिया जबकि पुरुषों का चरित्र-बल कुछ निम्न स्तर का रहा। स्त्रियों ने शास्त्रार्थ करने में भी अपनी प्रकृति-प्रदत्त बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौरव संप्राप्त किया है। विद्योत्तमा ने धुरन्धर प्रतिभासम्पन्न विद्वानों की पोल का रहस्योद्घाटन कर दिया। मण्डन मिश्र की स्त्री से कौन अपरिचित है जिसे शास्त्रार्थ में निर्णायक के रूप में मनोनीत किया गया। भारत की गौरवमयी परम्परा को उजागर करने में व समाज में संव्याप्त अर्थहीन रूढ़ियों का उन्मूलन करने में जानकी, अनुसूया, अहिल्या, गायत्री आदि स्त्रियों का स्पृहणीय व सक्रिय योगदान रहा है। इतिहास उन माताओं के पराक्रम, शौर्य व सहनशीलता की गाथाओं से गौरवान्वित है जिन्होंने अपनी संतानों को भारत के क्षत्रिय वंश के गौरव को सुरक्षित रखने की सुन्दर शिक्षा से आप्लावित किया। एक कथा प्रसंग इस प्रकार है—

रानी विदुला का पुत्र सिन्धुराज से परास्त होकर निराशावादी विचारधारा में निमग्न हो गया और उदासीन होकर घर आकर बैठ गया। वीरांगना को अपने पुत्र के हृदय दौर्बल्य पर बहुत ग्लानि हुई। उसे इस पौरुषहीनता से ऐसा आघात लगा मानो उस पर वज्रपात हो गया हो। अपने पुत्र को लताड़ते हुए उसने कहा—"पुत्र! तू एक क्षत्राणी की कुक्षि से पैदा हुआ है। मेरा सुख बढ़ाने की बनिस्बत शत्रु का सुख-वैभव बड़ा रहा है। क्षत्रिय अगर पराजित होकर पलायन करता है तो वह पुरुष नहीं कापुरुष है। तू उठ, तिन्दुक की लकड़ी की तरह चाहे क्षण भर भी ज्वलन्त होकर स्वाहा हो जा। जीने का मोह त्याग दे। या तो अपना पराक्रम दिखला अथवा अपना अन्त कर ले। क्योंकि जिस क्षत्रिय के पराक्रम व पौरुष की गौरवगाथा नहीं गायी जाती तथा जिसका पुत्र उत्साहहीन व कायर है वह माता सबसे बड़ी अभागिनी है।" इस प्रकार माताओं ने समय-समय पर पुत्रों को बलिदानी योद्धा बनने की प्रबल प्रेरणा से प्रोत्साहित किया है।

वैसे ही चोरी, अन्याय, अत्याचारों व दुर्व्यसनों से बचने की भी शिक्षा प्रदान करती रही हैं तथा सुसंस्कार भरती रही हैं। पर ये सारी बातें तभी संभाव्य हो सकती है जबकि नारी-समाज स्वयं प्रशिक्षित, अनुशासित आदि-आदि गुणों से अलंकृत व मण्डित हो। उसके व्यावहारिक जीवन में पवित्रता, उदारता, सौम्यता, विनय, अनुशासन-प्रियता आदि-आदि गुणों का पुट भी हो तो वस्तुतः उसका जीवन मणिकांचन योग होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org